Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 6, May-2019, ISSN 2230-7540

भारतीय राजनीति में गरमपंथी विचारधारा

Dr. Amar Jyoti Mishra*

Village-Darhar, Koshki Tola-Laheriasarai, Darbhanga

***सार** – भारतीय राजनीति में गरमपंथ के उस प्रवृति से स्पष्ट सादृश्य है जिसे टवाधनवी आर्षवाद कहता है। यह भारतीय जीवन, चिंतन तथा राजनीति के उस अव्यवस्थित तथा सतही पश्चिमीकरण की चुनौती के प्रतिक्रयास्वरूप आया, जिसने राममोहन राय द्वारा स्थापित संतुलित समन्वय को उलट-पुलट सा दिया था। यह तीन स्तरों पर प्रतिरोध का आंदोलन था।*

- x -

आध्यात्मिक क्षेत्रा में इसने परंपरागत हिन्दू धर्म, आचार और सामाजिक मूल्यों के उपर ईसाईयत और उपयोगितावाद तथा इन दोनों से ही अत्यधिक प्रभावित ब्रह्मसमाजी विचारधारा के खतरे का प्रतिकार किया। संस्कृति के धरातल पर गरमपंथ ने यांत्रिक भौतिकवादी और व्यक्तिवादी सभ्यता का प्रतिरोध किया जो विकास के देशजतंतुओं को नष्ट या विकृत करता दिखाई पड़ रहा था। राजनीतिक धरातल पर इस विचारधारा ने भारत के राष्ट्रीय व्यक्तित्व का उस विशाल तथा अपरिपक्व ब्रिटिश साम्राज्य में क्रमिक विलयन का विरोध किया जो यह दंभ करते हुए भी कि गोरी जाति ही काले लोगों का बोझ वहन कर रही है, इस काले लोगों के पीठ पर ही पूरा का पूरा डाल दिया। पश्चिम के अंधानुकरण की प्रतिक्रिया में इसने प्राचीन भारत के अनुकरण का दूसरा छोर अपनाया। यद्यपि इस पंथ का उद्भव भय की भावना से हुआ, पर इसने आक्रामक स्वर और प्रकृति अपनाई। अंग्रेजी सांचे में ढ़ले भारतीयों का हीन भावना के प्रति विकर्षण के कारण इसने पुरातनपंथी भारतीय में उतने ही अस्वस्थ दंभ को जन्म दिया। धर्म और राजनीति के बुद्धिवादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया से उत्पन्न यह एक भावोत्तेजक तथा अतीत के प्रति मोहांध रूमानी विचारधारा थी। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा स्थापित और अंग्रेजी कानून द्वारा पोषित 19 वीं सदी की यूरोपीय सभ्यता के दोनों ही आधारों- व्यक्तिवाद और उदारवाद को अस्वीकार कर कट्टरवादिता और मसीही उत्कंठा के साथ प्राचीन समूहवाद के आर्दश की उद्घोषणा की गई।[1] सभी गरमपंथी नेताओं में हम भारतीय इतिहास के प्रति समान आग्रह, भारत की आध्यात्मिक विरासत के प्रति समान दृष्टिकोण तथा पश्चिम के मोहजाल से मुक्त होने की समान कामना के दर्शन करते है। बंकिमचन्द ने कृष्णचरित्रा की रचना के बाद से ही कृष्ण इनके आदर्श नायक बन गए। तिलक ने गीता की टीका की और अरविन्द ने इसकी भूमिका लिखी। लाजपत ने उर्दू में श्रीकृष्ण का जीवन वृत संकलित किया और अश्वनीदत्त ने भागवत पंथ के मूल तत्व भक्तियोग का सविस्तार विमोचन किया। यहाँ तक कि बाह्यबांधव उपाध्याय ने कैथोलिक होते हुए भी श्रीकृष्ण तत्व की रचना की तथा विपिनचन्द्र पाल जैसे बुद्धिवादी ब्रह्मसमाजी पर विजयकृष्ण गोस्वामी के नव वैष्णववाद का ऐसा जादू चला कि उसने श्रीकृष्ण को “भारत की आत्मा”[2] के रूप में घोषित कर दिया। निकटतर ऐतिहासिक युग में आकर पूरा युग शिवाजी की प्रशस्ति में लीन हो गया। इसका प्रारंभ रमेशचन्द्र दत्त के महाराष्ट्र जीवन प्रभात के प्रकाशन से हुआ, तिलक के शिवाजी महोत्सवों में यह पराकाष्ठा को पहुँचा तथा टैगोर ने अंततः अपने शिवाजी उत्सव में इसे अमरत्व प्रदान किया। जहाँ पश्चिमी विद्वानों ने भारत की अद्भूत गरिमा को उद्घाटित किया, वहीं गरमपंथियों ने देवी मातृशक्ति के रूप में मातृभूमि की परिकल्पना की। पर केल्टी नवजागरण, जर्मन स्वच्छंदतावाद तथा स्लावप्रेमी आंदोलनों की तरह इसमें भी यह पलायनवादी मनोदशा प्रकट होती है, जिसके पीछे पश्चिमी संस्कृति तकनीकी और भौतिक शक्ति के साथ चल रहे कठोर और पस्त कर देनेवाले संघर्ष से भागकर अतीत के गर्भ में शरण पाने की इच्छा काम कर रही थी। इसकी तुलना हम उस बालक से कर सकते हैं जिसकी पश्चिम के प्रति भोली आस्था को नितान्त उपेक्षा झेलनी पड़ी और जिसके नव-अर्जित अभिमान को दया मिश्रित अहंकार ने आहत किया और जिसने प्रत्याक्रमण के लिए आत्मविश्वास प्राप्त करने हेतु भौतिक सम्पदा से हीन परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पन्न माँ की गोद में भाग कर शरण ली। गरमपंथ को हमें पुनरुत्थानवाद का पर्याय नहीं मानना चाहिए। जहाँ पुनरुत्थानवाद प्राचीन भारतीय सभ्यता के बहिरूप की ओर लौटा, वहीं गरमपंथ इसकी आत्मा की ओर उन्मुख हुआ,

ताकि सम्पूर्ण जीवन में फिर से आध्यात्मिकता परिव्याप्त हो सके। अधिकांश पश्चिमी विद्वानों, जिनमें चार्ल्स हाइमसेथ[3] सबसे हाल के हैं, तथा कतिपय भारतीय विद्वानों ने बंकिमचन्द्र में धार्मिक पुनरुत्थानवादा और राजनीतिक गरमपंथ का स्रोत पाया है।[4] सामाजिक और राजनीतिक रूपांतरण में विदेशी आदर्श का अस्वीकरण, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष देशज प्रेरणा में राष्ट्रवाद के मूल का अन्वेषण, धार्मिक या सांस्कृतिक लोकाचार के प्रति आग्रह के द्वारा इस राष्ट्रवाद का उद्दीपन, भारत राष्ट्र और मातृभूमि की रहस्य-सर्जना की दिशा में पहले कदम के रूप में हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान इन सभी तत्वों को बंकिमचन्द के चिन्तन में ढूंढ़ा गया है। उसकी तत्त्वतः बंगाली भावभूमि पर खेद प्रकट किया गया है, क्योंकि यह उसकी राष्ट्रीय भावना का खंडन करता है। इसी तरह उसके चिन्तन के एकांतिक हिन्दू स्वर और धारणा की निन्दा की गई है, क्योंकि इससे हिन्दू सम्प्रदायवाद को अपने बचाव और मुस्लिम सम्प्रदायवाद को बहाना मिलता है। बहुधा बंकिमा को इस रूप में चित्रित किया जाता है मानों वह राममोहन रूपी लूथर का लोयला हो जिसने प्रतिसुधारांदालोन का प्रतिपादन किया।

बंकिम के चिन्तन के इर्द-गिर्द फैले भ्रमजाल की सफाई का यही समीचीन अवसर है। उसने स्वयं ही प्रचार में पुनरुत्थानवाद के महापुरोहित शशधरतर्कचूड़ामणि से बचने की चेतावनी दी है।[5] वह न तो मिल और मनु का कृत्रिम सम्मिश्रण था और न हर्डर और मैजिनी का भारतीय अवतार। इसकी कृतियों के विस्तृत विश्लेषण से हमें उसकी प्रगाढ़ विवेचनात्मक प्रतिभा, गहरे सामाजिक विवेक और उसकी मूलतः धार्मिक प्रकृति का परिचय मिलता है। उसे हम उच्चतर बुद्धिवाद, प्रत्यक्षवाद, उपयोगितावाद तथा विकासवाद की विचारधाराओं में जूझता हुआ पाते हैं। जिनकी लहरें अठारहवीं सदी के आरंभ में ही पश्चिम के ईसाई जगत में उठ रही थी और जो अब हिन्दू भारत से टक्कर लेने को सामने थी। उनकी प्रतिक्रिया पिछली पीढ़ी के राममोहन जैसी ही गंभीर और उदात्त थी। बंकिम का युग ऐसा था जिसने 18वीं सदी की बौद्धिक जागृति के सार्वभौमिकतावादी आदर्श को अस्वीकृत किया। इतिहासवाद लियोपोल्डवान रैंके और जर्मन स्वच्छदंतावादी हर्डरा[6] की तरह उसकी धारणा थी कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग या सभ्यता का अपना विशिष्ट चरित्रा होता है। अतः विभिन्न युगों और सभ्यताओं को सार्वभौम मूल्यों की दृष्टि से विवेचित या विश्लेषित करने से उनकी विशिष्टता का बोध करानेवाले निर्णायक अन्तर मिट जाते हैं। जहाँ जर्मन स्वच्छन्दतावादी नेपालियन के सामाज्य में मूर्त फ्रांसिसी क्रांति के सार्वभौमिकतावादी मिथ्या दावे से लोहा ले रहे थे, वहीं बंकिम ब्रिटिश साम्राज्य में मूर्त उपयोगितावाद के सार्वभौमिकतावादी मिथ्या दंभ से लड़ रहा था। भारतीय समाज को समरूप बुद्धिवादी उपयोगितावादी ढाँचे में ढ़ालने की अपनी अधीनता के कारण उदारवादी सुधारक बहुधा इस तथ्य को भूल जाते थे कि जो पाश्चात्य सभ्यता के लिए सही है, आवश्यक नहीं कि वह भारतीय सभ्यता के लिए भी सत्य हो। बंकिम ने जोर देकर कहा कि विकास स्वभावतः असमानुरूपतावादी होता है। दूसरा बंकिम ने समाज के पुनर्निर्माण के साधन के रूप में प्रागनुभूत तथा विदेशी विचारों की अपेक्षा राजनीतिक और ऐतिहासिक कल्पना पर अधिक भरोसा किया, क्योंकि वह प्रकृति मनुष्य तथा इतिहास को ध्यान में रखता है। तीसरा उसके विचार से समुदाय का जीवन ही इतिहास का वास्तविक विषय है, न कि व्यक्ति विशेष के कारनामें, यद्यपि उसने मानस व्यापार में व्यक्ति की भूमिका को कभी भी अस्वीकार नहीं किया। उसने प्रजातीय उद्गम सांस्कृतिक अभिव्यंजना तथा भाषागत विशिष्टताओं के कारण बंगालियों को अन्य भारतवासियों से पृथक मानकर उसपर विचार किया।[7] भाषा, समुदाय की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है और स्वभाषा प्रेमी बंकिम ने अंग्रेजी और संस्कृत से जमकर संघर्ष किया। उसने बंगाल पर लिखा और बंगला में लिखा। बख्तियार खिलजी के बंग विजय से लेकर वारेन हेस्टिंग्स द्वारा इसके परतंत्रा बनाये जाने तक, वह बार-बार अपनी मातृभूमि के ह्रास, पतन और नवजागरण के आख्यान में लगा रहा। सत्यानन्द ने महेन्द्र को मातृभूमि की जिन तीन प्रतिभाओं के दर्शन कराये, उन्हें कौन भूल सकता है। अंततः उसने मातृभूमि को दैवी मातृसत्ता से एकाकार कर दिया। फिर भी यह ध्यान देने की बात है कि आनन्दमठ के प्रकाशन से कृष्णचरित्रा के प्रथम भाग के प्रकाशन के बीच की अवधि में बंगाली का भारतीय के रूप में रूपांतरण हो रहा था, तथा बंकिम के महाभारत और गीता के अध्ययन से एक महामान्वित स्वर उभर चुका था। वह था श्रीकृष्ण जैसे महामानव के नेतृत्व में सम्पूर्ण भारत का स्वप्न। उनमें आर्य जाति के शुद्धता के पुनरूत्थानवादी मिथक को अस्वीकार करने की बौद्धिकता थी तथा साथ ही बंगाली जाति के शरीर गठन की स्वभाविक कमजोरी को स्वीकार करने का साहस भी। चैथे बंकिम प्राचीन सभ्यताओं के आधुनिक मूल्यों की कसौटी पर परखने की पश्चिमी प्रवृत्ति का घोर आलोचक था। यहूदी-ईसाई दृष्टिकोण के इस दंभ को सर्वप्रथम वाल्तेयर ने परिलक्षित किया था। बंकिम और आगे गया। उसने बुद्धिवादी परम्परा को इसके धर्मविरोधी तथा मध्ययुगीनता विरोधी मुकाम से मुक्त किया। गाथिक तत्त्व ने उसे दूरस्थ धूमिलता पर रूपांतरवादी दृष्टिपात कराने में वैसी ही सहायता पहुँचाई, जैसी सहायता कोलरिज और किट्स को मिली थी। पाँचवी बात यह कि वह

उन सामान्य रोमांटिकों से भिन्न था जिन्होंने सामाजिक मापदंड की सीमा को अस्वीकार कर सभी वैयक्तिक इच्छाओं का अनुसमर्थन उनकी शक्ति और तीव्रता में ही ढूँढ़ा है। इसके विपरीत बंकिम ने समाज को अवयवी जीवधारी के रूप में ग्रहण किया। जीवन का समष्टि रूप उसकी इकाईयों से बढ़कर है और इकाईयों के जीवन पर इसका अधिकार है। यही कारण है कि स्वयं हैवीवर के प्रमाण चिन्ह से मुक्त शुद्ध कुलीन ब्राहमण होते हुए भी[8] वह दलित और शूद्रों के लिए तथा स्वयं सम्पन्न बुर्जुआ होते हुए भी शोषित कृषक वर्ग के प्रति सहानुभूति रखता था। उसकी कठोर रूढ़िवादिता का भी यही कारण है जिसके चलते उसने शैवालिनी को नरक का भागी ठहराया, क्योंकि उसने वैयक्तिक वासना के वशीभूत होकर सामाजिक आदर्शों की अवहेलना की थी। अपने अहं की स्वतंत्राता और पृथकता को महत्त्व देकर उसकी दृष्टि में शैवालिनी पाप की भागी बनी थी। बंकिम के अनुसार उद्दाम वासना समाज और कानून की युक्तियुक्त व्यवस्था के लिए खतरा है यदि मनुष्य वासना को नियंत्रित करने के बदले उसके मोह भवंर में अपने आपको डुबा दे, पर उसके सम्पूर्ण दृष्टिकोण को एक अमोध सौंदर्य भावना ने स्निग्ध बना दिया था और वह जीवन की विनोदपूर्ण स्वीकृति के कारण मानवीय तथा मर्मस्पर्शी काव्य से महिमान्वित बन गया था। उसकी अंतिम रचनाओं को छोड़कर जिनमें उसका चिंतक उसके कलाकार पर हावी हो गया, अन्य रचनाओं में उसने अमूर्त की अपेक्षा मूर्त पर, सामान्य की अपेक्षा अनुभूत पर बल दिया तथा अनालोपित मताग्रह की धारा में अर्धचेतन ढंग से बहने की अपेक्षा अध्यात्मिक स्वाधीनता की ललक प्रदर्शित की। उसके अनुसार आत्माभिव्यंजन ही मनुष्य की सार्थकता है जिसे व्यक्ति अपने आपको सुसंस्कृत और समन्वित करने में ही ग्रहण कर पाता है। व्यक्ति या समूह की नैतिक स्वाधीनता तथा मुक्ति में उसकी निरन्तर रूची थी, पर विवेक खोकर नहीं। वह उस सौम्य परिपक्वता एवं भव्य शांति की मनोवृत्ति से सम्पन्न था जो एपीक्यूरस के अनुसार देवसुलभ होती है और जिसे देवगण वैसे मनुष्यों को प्रदान करते हैं जो उनकी ही तरह दुनिया को धीरता के साथ पूरी सम्पूर्णता में देख चुके हैं। बंकिम के हृदय में बैंथम के प्रति बड़ा ही आदर था, पर उसने उपयोगितावाद को न तो संपूर्ण सत्य के रूप में और न धर्म के विकल्प के रूप में ही ग्रहण किया। उसने शुभ की स्थापना नैतिक धर्म में की, न कि भौतिक अर्थ में। दूसरे बेंथम द्वारा दिया गया कलन कलकुलस ऐसे ही व्यक्ति के लिए उपयुक्त है जो शुभ और अशुभ के अंतर को सही-सही तौल सकता हो। जेम्स मिल और बेंथम की दृष्टि में सदाचारी वही हैं जो अच्छा गणनाकार है।[10] इन मामलों में बंकिम को न तो अंकगणीतीय मापदंड पर विश्वास था।[11] और न कृत्रिम या स्वार्थमूलक अभिप्रेरकों पर ही, जिन्हें जेम्स मिल दुसरों के सुख की अभिवृद्धि या प्रेरणास्रोत मानता है। बंकिम के अनुसार मानव प्रेम ही शुभ कार्यों का आधार है, जो आत्मसुख को बढ़ाने की ईच्छा या लोकानुमोदन प्राप्त करने की आकांक्षा से कहीं बढ़कर है। उसका तर्क था कि आनन्द प्रेम का कारण नहीं वरन् प्रेम ही आनन्द का कारण है। यदि ईश्वर को सभी जीवों में मानव मात्रा में ही नहीं व्याप्त मान लें और यदि अपने पराये में भेद नहीं रह जाए तो दूसरों के सुख के संवर्द्धन का अर्थ होगा अपने सुख का ही संवर्द्धन।[12] जान स्टुअर्ट मिल पहले धर्मादेश को छोड़कर दूसरे धर्मादेश से अपने चिन्तन का आरंभ करता है-अपने पड़ोसी को अपने ही तरह प्यार करो। बंकिम ने पहले से प्रारंभ किया “अपने प्रभु परमेश्वर को प्यार करो”। इसी से वह मानव प्रेम तक पहुँचता है। तीसरे बंकिम ने सुख के पश्चिमी आदर्श को मोक्ष के प्राचीन भारतीय आदर्श के विपरीत नहीं माना। “मोक्ष” को सुख का सर्वोच्च स्थिति मानने पर दोनों के बीच समन्वय स्थापित किया जा सकता है। बंकिम ने तपश्चर्या के आदर्श को मजबूती से खंडन किया। वह इह लोक और परलोक दोनों में ही सुख का आकांक्षी था। फिर भी उसे भौतिकवादी नहीं माना जा सकता। कमलाकांतेर दफ्तर के एक उल्लेखनीय प्रबंध ”आपार मन” में उसे भारत को आक्रांत कर रहे भौतिक सम्पदा के पीछे भागने के पश्चिमी उन्माद की भर्त्सना करते हुए पाते हैं। बंकिम को अक्सर सामाजिक प्रतिक्रियावादी उदारवादी सुधारों का कट्टर शत्रु तथा प्रगति विरोधी रुढ़िवादियों और पुराणपंथियों के उद्धत प्रवक्ता के रूप में चित्रित किया गया है। यह या तो अज्ञान के कारण है या जान-बूझकर की गई भ्रांत व्याख्या है। अहस्तक्षेप की नीति की लीक पर अबाधित गति से चलकर भविष्य के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया जा सकता है, परवर्ती 19वीं सदी की इस भ्रामक धारणा का उसे पुर्वानुमान था क्योंकि मनुष्य और समाज के सम्बन्ध में अपने समकालीनों की अपेक्षा उसका ज्ञान कहीं अधिक था। उसने अतीत को इष्ट नहीं बनाया जैसा कतिपय गरमपंथियों ने किया। परंपरा के प्रति उसका कभी भी अंध प्रेम नहीं था। स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण विषयों में धर्म के पुरोहितों का क्षुद्र हस्तक्षेप उसे नापसन्द था। वह स्त्रीऔर पुरुष को शिक्षा की समान सुविधा तथा विधवा विवाह की स्वतंत्राता का हिमायती था। जो कुन्दनदिनी या रोहिणी के दुखद अंत को देखकर अकारण उन्हें रूढ़ीवादी मान बैठते हैं। उसने नारी को गृहस्थी के संकीर्ण पिंजरे में बन्द रखने के पुरुष के अधिकार को चुनौती दी।[13] बंकिम ने नारी मुक्ति के स्तुत्य प्रयासों के लिए विद्यासागर तथा ब्रहमसमाज के प्रति श्रद्धा व्यक्त की तथा ऐसे प्रयासों के प्रति उदासीनता का रूख रखने के कारण समाज की भी खबर ली। वैदय तथा स्वधर्म त्यागी केशवचन्द्र सेन को ब्राहमणों का आदर्श गुरु घोषित करने के कारण वह

हिन्दुओं की आलोचना का पात्रा बना। उस समय के तथाकथित प्रगतिवादी निजी सम्पत्ति के पक्के समर्थक थे तथा दमामी (स्थायी) बंदोबस्त के विस्तार को ही सभी धार्मिक बुराईयों की रामबाण मानते थे। इसके विपरीत बंकिम ने जमींदार और रैयत के वास्तविक सम्बन्धों का विश्लेषण कर उसमें निहित स्पष्ट अन्याय की निन्दा करने का साहस दिखाया। केवल बंकिम ही था जिसे मालथस द्वारा बताई बढ़ती जनसंख्या की दानवी छाया का भान हुआ। जॉन स्टुअर्ट मिल की तरह इसने जन्म विरोध तथा सम्पत्ति के सामाजिक नियंत्राण का मजबूती से पक्ष लिया।[14] मुट्ठी भर पश्चिमी शिक्षा प्राप्त और कोटि-कोटि अनपढ़ जनता के बीच दिन प्रतिदिन चैड़ी होती खाई को देखकर वह काँप उठता था।[15] उसमें न केवल इस तथ्य को ग्रहण करने की दूरदर्शिता ही थी वरन् इसे घोषित करने की ईमानदारी भी थी कि वैयक्तिक समृद्धि या वैयक्तिक विकास का अनिवार्य अर्थ सामाजिक विकास नहीं होता। गंभीर आर्थिक और सामाजिक तनाव समाज की आंगिक एकता के लिए खतरा बने हुए थे, भले ही बाबू वर्ग पश्चिमी प्रगति की बंशी बजाने में मस्त था।

बंकिम हर्बर्ट स्पेंसर से सहमत था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी चिंता आप करनी चाहिए।[16] सृष्टि के संरक्षण के लिए ईश्वर ने ही आत्म संरक्षण का विधान किया है। परन्तु बंकिम ने शंका उठाई कि क्या इसमें दूसरों को विनाश से बचाने का समान कत्र्तव्य निहित नहीं है अपरिष्कृत डर्विनवाद के अनुसार समाजशास्त्रा और राजनीतिशास्त्रा को जीव-विज्ञान के सभी सामान्य सत्य स्वीकार और ग्रहण करने चाहिए ताकि भ्रांतिपूर्ण धारणाओं पर आधारित नीतियाँ उन्हें अस्त-व्यस्त, विकृत या दमित न करें। टी0 एच0 हक्सले की तरह बंकिम ने ऐसे विचारों की आलोचना की। सामाजिक प्रगति का अर्थ होता है कास्मिक प्रक्रिया (या प्राकृतिक धर्म) को पग-पग पर नियंत्रित करना और उसके स्थान पर एक दूसरी प्रक्रिया को स्थापित करना, जिसे हम नैतिक प्रक्रिया का संज्ञा दे सकते हैं।[17] यदि चलती का नाम गाड़ी ही प्राकृतिक चयन की नैतिकता का अर्थ है तो बंकिम ने इस धारणा को ठुकरा दिया।[18] डार्विन दमन के विरूद्ध था तो बंकिम आसक्ति के क्योंकि उसके अनुसार यौन या पितृसुलभ स्नेह जैसी मानसिक क्षमताओं से असंतुलित उद्दीपन से व्यक्तित्व का समन्वय नष्ट हो जाता है। उसे आशंका थी कि कहीं डर्वीनवाद का विस्तार अंतर्राज्यीय संबंधों के क्षेत्रा में न हो जाय, और योग्यता के उत्तरजीवितों के नाम पर एक राष्ट्र वैसे ही दूसरे राष्ट्र का भक्षण करने लगे जैसे एक कुत्ता दूसरे कुत्ता का करता है। उसकी दृष्टि में आक्रामक देशप्रेम के पश्चिमी विष से भारत की रक्षा होनी चाहिए।[19] आनन्द मठ के सम्मोहक प्रभाव के कारण हम बहुधा भूल बैठते हैं कि उपन्यास के अंत में बंकिम ने स्वयं ही संकीर्ण राष्ट्रवाद की नितांत निष्फलता प्रदर्शित की है। गरमपंथियों के विपरीत उसके लिए देश प्रेम कभी भी धर्म का अनुकल्प नहीं था। बंकिम के चिन्तन को स्टुअर्ट मिल के थ्री ऐसेज आॅन रिलिजन (1850-58) से पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई। ‘किसी प्रतिभाहीन मूसा की तरह‘ मिल ने सूखे चट्टानों से जल का स्रोत जोड़ने का प्रयास किया। यह था आत्मप्रेम से पर हितवाद, बंधन से स्वातंत्रय और तर्क से निष्ठा को उद्भूत करने का प्रयास। इसने परंपरागत धर्म को बौद्धिक रूप में अप्रमाण्य मानकर अस्वीकार कर दिया। जो धर्म उसे कष्ट था उसका कहना था कि प्रकृति को बदलने के साथ-साथ अपने आपको सुधारना मानव जाति का सर्वोपरि कत्र्तव्य हैं।” उसने बलपूर्वक कहा कि मानवता के प्रायः सभी सामान्य गुण सहज प्रवृत्ति के प्रतिफल नहीं, वरन सहज वृत्तियों पर प्राप्त विजय के प्रतिफल हैं, तथा सांस्कृतिक परिष्कार से ही सद्गुण मानव की दूसरी प्रकृति बन जाता है जो उसकी मूल प्रकृति से भी सुदृढ़ होती है। प्रकृति का विधान, जिसे किसी नवीस या किसी डोमीशियन की विलक्षण करता कदापि मात्रा नहीं दे सकती थी स्पष्ट ही किसी सर्वशक्तिमान उपयोगितावादी सृष्टा की कृति नहीं हो सकता था, जिसका लक्ष्य मानव कल्याण हो। यह संसार जैसा निर्मित है, वह उस शक्ति की सीमा को सिद्ध करता है तथा मनुष्य का कर्तव्य है कि शुभ के संधान में निरन्तर लगे रहकर उसके साथ सहयोग करे। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि धर्म का सार तत्त्व है उस आदर्श लक्ष्य की ओर भावनाओं और इच्छाओं को प्रबल और हार्दिक रूप से परिचालित करना जिसे सर्वोत्कृष्ट गुणों में से एक के रूप में स्वीकार किया गया है और जो सभी सवार्थपरक इच्छाओं के विषयों से अधिकाधिक रूप में सर्वोपरि है।

इस शर्त को मानवता का धर्म उतने ही ऊँचे अंश तथा ऊँचे अर्थ में पूरा करता है जितना विभिन्न लोकोत्तर धर्म अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में करते हैं, बल्कि उनके अन्य रूपों की अपेक्षा तो यह कहीं अधिक उत्कृष्ट है।[20] उसने ईश्वरवाद के पक्ष में दिए गए तर्कों का खंडन किया। उसके अनुसार प्रथम कारण को मानने की आवश्यकता अनुभव द्वारा पुष्ट नहीं होती और यदि मानना जरूरी भी हो तो इस संबंध में मस्तिष्क या आत्मा की अपेक्षा जड़ तत्व का दावा अधिक मजबूत है। प्रकृति की येजनाबद्धता के तर्क के आधार पर हम ऐसी सत्ता को निरूपित करते हैं जिसकी शक्तियां महान तो है पर है सीमित। बल्कि इससे शुभ और अशुभ की शक्तियों की द्वयात्मकता का संकेत मिलता है। जहाँ तक ईश्वर के प्रकाशन का प्रश्न है, उसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में ग्रहण

नहीं किया जा सकता। मानवता का धर्म ही प्रत्यक्षवादी धर्म हो सकता है।

बंकिम ने अवतारवाद का समर्थन किया जिससे राममोहन और देवेन्द्रनाथ गहरी नफ़रत करते थे। इसने जोर देकर कहा कि ईश्वर अपनी ईच्छा शक्ति से समय-समय पर लौकिक रूप ग्रहण करता है। वह चरम तत्व का पूर्ण ज्ञान लेकर संसार में आता है, पर वह इस शरीरजनित अज्ञान और दुर्बलता को ओढ़ लेता है, ताकि उनसे परे जाकर वह दूसरे के लिए आदर्श उपस्थित कर सके। उसमें शब्द ब्रह्म शरीर का रूप ग्रहण करता है। बुद्ध और ईसा अवतार थे। पर श्रीकृष्ण विशुद्धतम अवतार था।[21] वे अवैयक्तिक और वयैक्तिक, देवी और मानवीय का संश्लेषण था, एक साथ ही व्यक्ति और सार्वभौम। बंकिम ने श्रीकृष्ण को मानव में प्रकट या मानव में अवरोहित मात्रा पौराणिक चमत्कार के रूप में चित्रित करना अस्वीकार किया। उसने पूर्ण परिष्कार सभी क्षमताओं-भौतिक और बौद्धिक, सक्रिय तथा सृजनात्मक के अनुशीलन तथा इस पूर्ण विकसित आत्मनियंत्रित व्यक्तित्व के लोकसंग्रह तथा सर्वभूतहित के प्रति समर्पण के माध्यम से मनुष्य के ईश्वर तत्त्व तक आरोहण कर उन्नति का परख किया। अवतार देश काल द्वारा अपने को कुछ विशेष निश्चित उद्देश्य में सीमित करनेवाला ईश्वर मात्रा ही नहीं वरन् उस ईश्वरीय चेतना का प्रतीक है जो सदा मनुष्य में अप्रकट रूप से वर्तमान रहता है तथा मनुष्य की आत्मपूर्णता के लिए किये जानेवाले अविरत प्रयास के प्रति सक्रिय होने के लिए तैयार रहता है। वह एक अध्यात्मिक शक्ति संचारक है जिससे मनुष्य और राष्ट्र का निर्माण करनेवाली शक्तियाँ निःसृत होती है। वह विश्व को रूपांतरित कर सकता है क्योंकि ईश्वर के रूप में बोध ईच्छाशक्ति, उद्देश्य और प्रयास से जुड़ा होता है और मानव ने ईश्वर में ही अपनी पूर्णतम महिमा और गरिमा प्राप्त की है।

नरमपंथियों की तिरस्कारपूर्ण आलोचना करके बंकिम ने गरमपंथियों का मार्ग प्रशस्त किया। वह न तो पदलोलुप राजनीतिज्ञ था और न समाज सुधारक। एक भाषा एक साहित्य और एक राष्ट्र का यह निर्माता परवर्ती 19वीं सदी के क्रोधित नवयुवकों का अग्रदूत था, जिन्हें नरमपंथियों की तीन पवर्गों की नीति तथा नपुंसक समाजों और शब्दाडम्बरपूर्ण प्रस्तावों पर दयनीय भरोसे के लिए धैर्य नहीं था। अरविन्द ने उससे ही सीख ली कि भारतीय अ-राष्ट्रीय कांग्रेस या साधारण ब्रह्म-समाज का भविष्य नहीं बन सकता।[22] उसने ही गरमपंथियों को आंदोलन की स्वान पद्धति छोड़कर सिंह की पद्धति अपनाने का निर्देश दिया और माँ की वह प्रतिमा दिखलाई, जिसकी सात करोड़ संतानों ने अपने दोनों हाथों में तीक्ष्ण तलवार ले रखी थी, भिक्षापत्रा नहीं। अब तक एक नई पीढ़ी सामने आ चुकी थी, जिसे कांग्रेस के अधिवेशन में लम्बे भाषण देने वाले बंगाल विधान परिषद् में मूर्खतापूर्ण प्रश्न आप मियाँ मिट्ठू बननेवाले तथा कलकत्ता कॉर्पोरेशन की नागरिक समस्याओं की व्यवस्था में गोलमाल करने वाले बाबुओं की परवाह नहीं थी। बंकिम ने उनके बीच बंगाल और उनकी नई गरिमा के प्रति प्रेम का बीज बो दिया और उन्हें वन्दे मातरम् का मंत्रा दे दिया। अरविन्द और उनकी पीढ़ी पर आनन्दमठ का गहरा प्रभाव पड़ा था, परन्तु अरविंद का भवानी मंदिर सम्पूर्णतः इसकी नकल नहीं है।[23] शिवाजी के नेतृत्व में मराठा राष्ट्रवाद की पुर्नजागृति में भवानीपंथ एक महत्वपूर्ण तत्त्व रहा था। बड़ौदा में रहते हुए अरविन्द ने इसे वातावरण से ही ग्रहण किया जो तिलक के शिवाजी महोत्सवों की भावना से और भी प्रभावित था। अरविन्द ने आनन्दमठ का गलत अर्थ लगाया। उसकी तथा उसकी तरह के अन्य बंगाली गरमपंथियों की समझ में बंकिम का राष्ट्रवाद तत्वतः धार्मिक, हिन्दू साम्प्रदायिकता तथा बंगाली वाद में बद्धमूल था। काली की काली, नग्न तथा विस्मयकारी प्रतिभा में अरविन्द ने पिछली एक सदी में शोषण का दुःखद इतिहास लिखा देखा। सन्तानों के प्रति सत्यानन्द के आह्वान में उसे आसुरी ब्रिटिश शासन के विरूद्ध भारत की वीर भावना के प्रति उद्बोधन सुनाई पड़ा। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि उपन्यास की प्रस्तावना और उपसंहार के प्रति उदासीनता के कारण ही अरविन्द और गरमपंथी तथा उनके आधुनिक समर्थक भ्रम में पड़ गये। उन्होंने समझा की इनमें व्यक्त भावनाएँ बाद में आरोपित थी, एक चैकस सरकारी कर्मचारी द्वारा स्पष्टतः ब्रिटिश विरोधी पुस्तिका के छद्मावरण का प्रयास। यह बंकिम की ईमानदारी पर गहरा कलंक है। सत्यानन्द के गुरु का कथन है कि ईश्वरीय विधान ही अंग्रेजों को भारत में लाया और उन्हें तबतक टिकाए रहेगा जबतक हिन्दू स्वयं अपनी अशुद्धताओं का परिष्कार कर ज्ञान और भक्ति, धर्म और कर्म, सन्यास और उद्गम और कल्याण एवं शान्ति के बीच सामंजस्य नहीं स्थापित कर लेते। बंकिम ने भारत की पराधीनता के लिए निम्नलिखित कारणों को उत्तरदायी ठहराया है। उनके अनुसार भारतीयों में स्वतंत्राता की अभिलाषा का जन्मजात अभाव तथा हिन्दू समाज के मतभेद जिन्होंने विचार विनियम एवं प्रयत्नों की एकता को असंभव तथा राष्ट्र की दृढ़ आत्माभिव्यक्ति के संकल्प को क्षीण बना दिया था। उनके अनुसार हाल में केवल मराठों और सिखों ने ही राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की दिशा में प्रयत्न किए थे। बंकिम ब्रिटेन की प्रशंसा करता है, क्योंकि उसने भारत को राष्ट्रीयता बोध की शिक्षा दी और सामान्य जनता की ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया। गरमपंथियों के लिए देशप्रेम कम से कम

स्वतंत्राता प्राप्ति से पूर्व तक के लिए, परमधर्म और एकमात्रा साक्ष्य था।

संदर्भ:-

1. बी0 टी0 मैक्कुली, इंगलिस एजुकेशन एण्ड दि ओरिजिन आॅफ इंडियन नेशनलिज्म, 1940, पृ0- 50-55
2. विपिनचंद्र पाल, दि सोल ऑफ़ इंडिया (कलकत्ता, 1911), पृ0- 276-316
3. चाल्र्स हाइमसेथ, इण्डियन नेशनलिज्म एण्ड हिंदू सोशल रिफार्म, ऑक्सफोर्ड, 1964
4. अरविन्द, ऋषि बंकिमचन्द्र, वंदेमातरम, 16 अप्रैल, 1907
5. बंकिमचन्द्र, हिन्दूधर्म, प्रचार- 1, पृ0- 15-23
6. एफ0 एम0 बर्नार्ड, हर्डर्स सोशल एण्ड पालिटिकल थाट प्रामएनलाइटेनमेंट टु नेशनलिज्म, 1965, पृ0- 170-75
7. बंकिमचन्द्र, बांगलार इतिहास सबंधे कष्करिकला, विधि प्रबन्ध, जिल्द- 2, 1892
8. सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय, बंकिम जीवनी, पृ0-9-12
9. बंकिम चन्द्र, बंगदेशेर कृषक, विविध प्रबन्ध, जिल्द- 2
10. जान प्लामेनाट्ज, दि इंगलिश पुटिलेटिरियंस, पृ0- 100
11. बंकिमचन्द्र, धर्मतत्व, अध्याय-ग्गप्प् भाग-प्
12. उपरोक्त - अध्याय-ग्गप्
13. श्रीशचन्द्र मजूमदार, बंकिम प्रसंग, पृ0- 198
14. बंकिम चन्द्र, बंगदेशेर कृषक, विविध प्रबन्ध, जिल्द- 2
15. बंकिम चन्द्र, लोकशिक्षा, विविध प्रबंध, जिल्द-2
16. हर्बर्ट स्पेंसर, डाटा ऑफ़ एथिक्स, अध्याय-ग्प्
17. टी0 एच0 हक्सले और जे0 हक्सले, इबोल्यूशन एण्ड एथिक्स, 1873-1943, पृ0- 81
18. डी0 जी0 रीचि, डारविनिज्म एण्ड पालिटिक्स (1889)
19. बंकिम चन्द्र, भारत कलंक, विविध प्रबंध, जिल्द-1
20. जान स्टुअर्ट मिल, थ्री ऐसेज, (1874) पृ0- 109
21. बंकिम चन्द्र, धर्मतत्व, अध्याय-प्ट
22. अरविन्द, बंकिम चन्द्र चटर्जी, सातवाँ और अंतिम लेख, इन्द्रप्रकाश, 27 अगस्त, 1894
23. दि सेडिशन कमेटी रिर्पोट, 1918, पृ0- 67

Corresponding Author

Dr. Amar Jyoti Mishra*

Village-Darhar, Koshki Tola-Laheriasarai, Darbhanga